CHAPTER इकतीस

गोपियों के विरह गीत

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण के वियोग की भावना से अभिभूत गोपियाँ यमुना के किनारे बैठ गईं और उनका दर्शन पाने के लिए प्रार्थना करने लगीं और उनके यश का गायन करने लगीं।

चूँकि गोपियों ने अपने मन और प्राण तक कृष्ण को अर्पित कर दिये थे अतएव विरह की दिव्य पीड़ा से वे अपने आप में नहीं थीं। किन्तु दीनता के प्रमाणस्वरूप लगने वाला उनका रोदन वास्तव में उनकी दिव्य आनन्दावस्था को प्रदर्शित करने वाला है। जैसाकि कहा गया है—*यत देख वैष्णवेर व्यवहार दु:ख/ निश्चय जानिह सेइ परमानन्द सुख*—जब भी कोई किसी वैष्णव को दुखी होते देखता है, तो उसे निश्चित रूप से समझना चाहिए कि वह वास्तव में परम आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव कर रहा है। इस तरह प्रत्येक गोपी अपने अपने आनंद के भाव के अनुसार श्रीकृष्ण को सम्बोधित करने लगी और सबों ने उनकी कृपा के लिए प्रार्थना की।

ज्योंही गोपियों के मन में कृष्ण की लीलाएँ उठीं त्योंही वे उनके गीत गाने लगीं जो कृष्ण की विरहाग्नि से दुखितों की वेदना को दूर करने वाले और परम मंगल प्रदान करने वाले होते हैं। उन्होंने गाया, ''हे स्वामी, हे प्रिय, हे छलिया! जब हम तुम्हारी हँसी, तुम्हारी प्रेममयी चितवन तथा तुम्हारे बालसखाओं के साथ तुम्हारी लीलाओं को याद करती हैं, तो हम अतीव क्षुब्ध हो उठती हैं। गोधूल से सने काले घुँघराले केशों से सुसज्जित तुम्हारे कमलमुख का स्मरण करके हम एकान्त भाव से तुममें अटूट रूप से अनुरक्त हो जाती हैं। और जब हम स्मरण करती हैं कि तुम किस तरह अपने कोमल पैरों से एक जंगल से दूसरे जंगल तक गौवों का पीछा करते थे तो हमें महान् पीड़ा होती है।''

कृष्ण के वियोग में गोपियों को एक-एक क्षण पूरे युग जैसा प्रतीत होता था। इसके पूर्व भी जब उन्होंने उन्हें देखा था, तो उनकी झपकती पलकें असह्य लग रही थीं क्योंकि उनसे उनका दृश्य कुछ देर के लिए अवरुद्ध हो जाता था।

गोपियों ने कृष्ण के लिए जो भावनाएँ व्यक्त कीं वे भले ही काम के लक्षणों से युक्त प्रतीत हों किन्तु वास्तव में वे भगवान् की आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने की उनकी शुद्ध इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। गोपियों के इन भावों में काम छू तक नहीं गया है।

गोप्य ऊचुः
जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; जयति—जय हो; ते—तुम्हारी; अधिकम्—अधिक; जन्मना—जन्म से; व्रजः—व्रजभूमि; श्रयते—वास करती है; इन्दिरा—लक्ष्मीदेवी; शश्वत्—निरन्तर; अत्र—यहाँ; हि—निस्सन्देह; दयित—हे प्रिय; दृश्यताम्—(आप) देखे जा सकें; दिक्षु—सभी दिशाओं में; तावकाः—आपके (भक्त); त्वयि—आपके लिए; धृत—धारण किये हुए; असवः—अपने प्राण; त्वाम्—तुमको; विचिन्वते—खोज रही हैं।

गोपियों ने कहा : हे प्रियतम, व्रजभूमि में तुम्हारा जन्म होने से ही यह भूमि अत्यधिक महिमावान हो उठी है और इसीलिए इन्दिरा (लक्ष्मी) यहाँ सदैव निवास करती हैं। केवल तुम्हारे लिए ही तुम्हारी भक्त दासियाँ हम अपना जीवन पाल रही हैं। हम तुम्हें सर्वत्र ढूँढ़ती रही हैं अतः कृपा करके हमें अपना दर्शन दीजिये।

तात्पर्य : जो लोग संस्कृत श्लोकों की उच्चारण-कला से परिचित हैं, वे इस बात की सराहना करेंगे कि इस अध्याय का संस्कृत काव्य बेजोड़ है। विशेषतया श्लोकों के छन्द असामान्य रूप से सुन्दर हैं और अधिकांशतः प्रत्येक पंक्ति का प्रथम तथा सप्तम अक्षर एक ही व्यञ्जन से प्रारम्भ होता है। उसी तरह चारों पंक्तियों के द्वितीय शब्द भी हैं।

शरदुदाशये साधुजातसत्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शरत्—शरद ऋतु का; उद-आशये—जलाशय में; साधु—उत्तम रीति से; जात—उगा; सत्—सुन्दर; सरसि-ज—कमल के फूलों के; उदर—मध्य में; श्री—सौन्दर्य; मुषा—अद्वितीय; दृशा—आपकी चितवन से; सुरत-नाथ—हे प्रेम के स्वामी; ते—तुम्हारी; अशुल्क—मुफ्त, बिना मूल्य की; दासिकाः—दासियाँ; वर-द—हे वरों के दाता; निघ्नतः—बध करने वाले; न—नहीं; इह—इस जगत में; किम्—क्यों; वधः—हत्या।

हे प्रेम के स्वामी, आपकी चितवन शरदकालीन जलाशय के भीतर सुन्दरतम सुनिर्मित कमल के कोश की सुन्दरता को मात देने वाली है। हे वर-दाता, आप उन दासियों का वध कर रहे हैं जिन्होंने बिना मोल ही अपने को आपको पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है। क्या यह वध नहीं है?

तात्पर्य : शरद ऋतु में कमल कोश की विशेष सुन्दरता होती है किन्तु यह अद्वितीय सौन्दर्य कृष्ण की चितवन के सौन्दर्य के आगे मात है।

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विष—विषैला; जल—जल (यमुना जल जो कालिय द्वारा दूषित था) से; अप्ययात्—विनाश से; व्याल—भयानक; राक्षसात्—(अघ) राक्षस से; वर्ष—वर्षा (इन्द्र द्वारा की गई) से; मारुतात्—तथा अंधड से (तृणावर्त द्वारा उत्पन्न); वैद्युत-अनलात्—वज्र (इन्द्र के) से; वृष—बैल (अरिष्टासुर) से; मय-आत्मजात्—मय के पुत्र (व्योमासुर) से; विश्वतः—सभी; भयात्—भय से; ऋषभ—हे पुरुषों में श्रेष्ठ; ते—तुम्हारे द्वारा; वयम्—हम; रक्षिताः—रक्षा की जाती रही हैं; मुहुः—बारम्बार।

हे पुरुषश्रेष्ठ, आपने हम सबों को विविध प्रकार के संकटों से—यथा विषैले जल से, मानवभक्षी भयंकर अघासुर से, मूसलाधार वर्षा से, तृणावर्त से, इन्द्र के अग्नि तुल्य वज्र से, वृषासुर से तथा मय दानव के पुत्र से बारम्बार बचाया है।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कहना चाहती हैं, ''हे कृष्ण! आपने हमें अनेक घोर संकटों से उबारा है, तो क्या अब जबकि हम आपके वियोग-दुख से मरी जा रही हैं आप पुनः हमें नहीं बचायेंगे?'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि गोपियाँ अरिष्टासुर तथा व्योमासुर का नाम इसलिए लेती हैं क्योंकि यह भलीभाँति ज्ञात है कि भले ही कृष्ण ने अभी इन असुरों का वध नहीं किया किन्तु वे आगे चलकर उन्हें मारेंगे क्योंकि भगवान् के जन्म के समय गर्ग तथा भागुरि मुनियों ने यह भविष्यवाणी की थी।

न खलु गोपीकानन्दनो भवा-
ननखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; खलु—निस्सन्देह; गोपिका—गोपी, यशोदा के; नन्दनः—पुत्र; भवान्—आप; अखिल—समस्त; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; अन्तः-आत्म—अन्तःकरण का; दृक्—द्रष्टा; विखनसा—ब्रह्मा द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विश्व—विश्व की; गुप्तये—रक्षा के लिए; सखे—हे मित्र; उदेयिवान्—आपका उदय हुआ; सात्वताम्—सात्वतों के; कुले—कुल में।

हे सखा, आप वास्तव में गोपी यशोदा के पुत्र नहीं अपितु समस्त देहधारियों के हृदयों में

अन्तस्थ साक्षी हैं। चूँकि ब्रह्माजी ने आपसे अवतरित होने एवं ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की थी इसलिए अब आप सात्वत कुल में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : गोपियों के कहने का आशय यही है कि, ''आप तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए अवतरित हैं, तो फिर आप अपने ही भक्तों की उपेक्षा कैसे कर सकते हैं?''

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विरचित—उत्पन्न किया; अभयम्—अभय; वृष्णि—वृष्णि कुल का; धूर्य—हे श्रेष्ठ; ते—तुम्हारे; चरणम्—चरण; ईयुषाम्—निकट पहुँचने वालों के; संसृतेः—भौतिक जगत के; भयात्—भय से; कर—तुम्हारा हाथ; सरः-रुहम्—कमल के समान; कान्त—हे प्रेमी; काम—इच्छाएँ; दम्—पूरा करने वाला; शिरसि—सिरों पर; धेहि—रखो; नः—हमारे; श्री—लक्ष्मीदेवी के; कर—हाथ; ग्रहम्—पकड़ते हुए।

हे वृष्णिश्रेष्ठ, लक्ष्मीजी के हाथ को थामने वाला आपका कमल सदृश हाथ उन लोगों को अभय दान देता है, जो भवसागर के भय से आपके चरणों के निकट पहुँचते हैं। हे प्रियतम, उसी कामना को पूर्ण करने वाले करकमल को हमारे सिरों के ऊपर रखें।

व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

व्रज-जन—व्रज के लोगों के; आर्ति—कष्ट के; हन्—नष्ट करने वाले; वीर—हे वीर; योषिताम्—स्त्रियों के; निज—अपने; जन—लोगों का; स्मय—गर्व; ध्वंसन—विनष्ट करते हुए; स्मित—मंद हँसी; भज—स्वीकार करें; सखे—हे मित्र; भवत्—आपकी; किङ्करीः—दासियाँ; स्म—निस्सन्देह; नः—हमको; जल-रुह—कमल; आननम्—मुख वाले; चारु—सुन्दर; दर्शय—कृपा करके दिखाइये।

हे व्रज के लोगों के कष्टों को विनष्ट करने वाले, समस्त स्त्रियों के वीर, आपकी हँसी आपके भक्तों के मिथ्या अभिमान को चूर चूर करती है। हे मित्र, आप हमें अपनी दासियों के रूप में स्वीकार करें और हमें अपने सुन्दर कमल-मुख का दर्शन दें।

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं

तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

प्रणत—आपके शरणागत; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; पाप—पाप; कर्षणम्—हटाने वाले; तृण—घास; चर—चरने वाली (गाय); अनुगम्—पीछे पीछे चलते हुए; श्री—लक्ष्मीजी के; निकेतनम्—धाम; फणि—सर्प (कालिय) के; फणा—फनों पर; अर्पितम्—रखा; ते—तुम्हारे; पद-अम्बुजम्—चरणकमल; कृणु—कृपया रखें; कुचेषु—स्तनों पर; नः—हमारे; कृन्धि—काट डालिए; हृत्-शयम्—हमारे हृदय की कामवासना।

आपके चरणकमल आपके शरणागत समस्त देहधारियों के विगत पापों को नष्ट करने वाले हैं। वे ही चरण गौवों के पीछे पीछे चरागाहों में चलते हैं और लक्ष्मीजी के दिव्य धाम हैं। चूँकि आपने एक बार उन चरणों को महासर्प कालिय के फनों पर रखा था अतः अब आप उन्हें हमारे स्तनों पर रखें और हमारे हृदय की कामवासना को छिन्नभिन्न कर दें।

तात्पर्य : याचना करती हुई गोपियाँ संकेत करती हैं कि भगवान् कृष्ण के चरणकमल सभी शरणागत बद्धजीवों के पापों को विनष्ट कर देते हैं। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे गौवों को चराने चरागाह भी जाते हैं और इस तरह उनके चरणकमल घास में भी उनका पीछा करते हैं। उन्होंने अपने चरणकमल लक्ष्मीजी को प्रदान किये हैं और उन्हें कालिय नाग के फनों पर भी रखा है। अतएव इन सबों पर विचार करते हुए भगवान् को अपने चरणकमल गोपियों के स्तनों पर रखकर उनकी इच्छाओं को पूरा करना चाहिए। गोपियाँ यहाँ यही तर्क उपस्थित करती हैं।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८॥

शब्दार्थ

मधुरया—मधुर; गिरा—अपनी वाणी से; वल्गु—मोहक; वाक्यया—अपने शब्दों से; बुध—बुद्धिमान को; मनो-ज्ञया—आकर्षक; पुष्कर—कमल; ईक्षण—आँखों वाले; विधि-करीः—दासियाँ; इमाः—ये; वीर—हे वीर; मुह्यतीः—मोहित हो रही; अधर—तुम्हारे होंठों के; सीधुना—अमृत से; आप्याययस्व—जीवन-दान दीजिये; नः—हमको।

हे कमलनेत्र, आपकी मधुर वाणी तथा मोहक शब्द, जो कि बुद्धिमान के मन को आकृष्ट करने वाले हैं, हम सबों को अधिकाधिक मोह रहे हैं। हमारे प्रिय वीर, आप अपने होंठों के अमृत से अपनी दासियों को पुनरुज्जीवित कर दीजिये।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; कथा-अमृतम्—शब्दों का अमृत; तप्त-जीवनम्—भौतिक जगत में दुखियारों का जीवन; कविभिः—बड़े बड़े चिन्तकों द्वारा; ईडितम्—वर्णित; कल्मष-अपहम्—पापों को भगाने वाला; श्रवण-मङ्गलम्—सुनने पर आध्यात्मिक लाभ देने वाला; श्रृईमत्—आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण; आततम्—संसार-भर में विस्तीर्ण; भुवि—भौतिक जगत में; गृणन्ति—कीर्तन तथा प्रसार करते हैं; ये—जो लोग; भूरि-दाः—अत्यन्त उपकारी; जनाः—व्यक्ति।

आपके शब्दों का अमृत तथा आपकी लीलाओं का वर्णन इस भौतिक जगत में कष्ट भोगने वालों के जीवन और प्राण हैं। विद्वान मुनियों द्वारा प्रसारित ये कथाएँ मनुष्य के पापों को समूल नष्ट करती हैं और सुनने वालों को सौभाग्य प्रदान करती हैं। ये कथाएँ जगत-भर में विस्तीर्ण हैं और आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत हैं। निश्चय ही जो लोग भगवान् के सन्देश का प्रसार करते हैं, वे सबसे बड़े दाता हैं।

तात्पर्य : राजा प्रतापरुद्र ने यह श्लोक भगवान् जगन्नाथ की रथ-यात्रा उत्सव के समय श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाया था। जब महाप्रभु एक उद्यान में विश्राम कर रहे थे तो राजा प्रतापरुद्र विनम्र भाव से वहाँ गये और उनके चरण चापने लगे। तब राजा ने *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कंध का इकतीसवें अध्याय—गोपी-गीत—सुनाया। *चैतन्य-चरितामृत* में बतलाया गया है कि जब महाप्रभु ने *तव कथामृतम्* से शुरू होने वाले इस श्लोक को सुना तो वे भावावेश में तत्क्षण उठ खड़े हुए और उन्होंने राजा प्रतापरुद्र का आलिंगन कर लिया। *चैतन्यचरितामृत* (मध्य १४.४-१८) में इस घटना का विस्तार से वर्णन हुआ है और श्रील प्रभुपाद ने अपने संस्करण में इसकी विस्तृत टीका की है।

प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदि स्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

प्रहसितम्—हँसना; प्रिय—स्नेहपूर्ण; प्रेम—प्रेमपूर्ण; वीक्षणम्—चितवन; विहरणम्—घनिष्ठ लीलाएँ; च—तथा; ते—तुम्हारी; ध्यान—ध्यान द्वारा; मङ्गलम्—शुभ; रहसि—एकान्त स्थान में; संविदः—वार्तालाप; याः—जो; हृदि—हृदय में; स्पृशः—स्पर्श; कुहक—हे छलिया; नः—हमारे; मनः—मनों को; क्षोभयन्ति—क्षुब्ध करती हैं; हि—निस्सन्देह।

आपकी हँसी, आपकी मधुर प्रेम-भरी चितवन, आपके साथ हमारे द्वारा भोगी गई घनिष्ठ

लीलाएँ तथा गुप्त वार्ताएँ—इन सबका ध्यान करना मंगलकारी है और ये हमारे हृदयों को स्पर्श करती हैं। किन्तु उस के साथ ही, हे छलिया, वे हमारे मन को अतीव क्षुब्ध भी करती हैं।

चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

चलसि—जाते हो; यत्—जब; व्रजात्—गोपों के गाँव से; चारयन्—चराने के लिए; पशून्—पशुओं को; नलिन—कमल से भी बढ़कर; सुन्दरम्—सुन्दर; नाथ—हे स्वामी; ते—तुम्हारे; पदम्—चरण; शिल—अन्न के नुकीले सिरों से; तृण—घास; अङ्कुरैः—तथा अंकुरित पौधों से; सीदति—पीड़ा अनुभव करते हैं; इति—ऐसा सोचकर; नः—हमारे; कलिलताम्—बेचैनी; मनः—मन; कान्त—हे प्रियतम; गच्छति—अनुभव करते हैं।

हे स्वामी, हे प्रियतम, जब आप गाँव छोड़कर गौवें चराने के लिए जाते हैं, तो हमारे मन इस विचार से विचलित हो उठते हैं कि कमल से भी अधिक सुन्दर आपके पाँवों में अनाज के नोकदार छिलके तथा घास-फूस एवं पौधे चुभ जायेंगे।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

दिन—दिन के; परिक्षये—अन्त होने पर; नील—नीले; कुन्तलैः—केश गुच्छों से; वन-रुह—कमल; आननम्—मुख; बिभ्रत्—प्रदर्शित करता; आवृतम्—ढका हुआ; घन—मोटा; रजः-वलम्—धूल से सना; दर्शयन्—दिखलाते हुए; मुहुः—बारम्बार; मनसि—मनों में; नः—हमारे; स्मरम्—कामदेव को; वीर—हे वीर; यच्छसि—रख रहे हो।

दिन ढलने पर आप हमें बारम्बार गहरे नीले केश की लटों से ढके तथा धूल से पूरी तरह धूसरित अपना कमल-मुख दिखलाते हैं। इस तरह, हे वीर, आप हमारे मन में कामवासना जागृत कर देते हैं।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

प्रणत—झुकने वालों की; काम—इच्छाएँ; दम्—पूरी करते हुए; पद्म-ज—ब्रह्मा द्वारा; अर्चितम्—पूजित; धरणि—पृथ्वी के; मण्डनम्—आभूषण; ध्येयम्—ध्यान के पात्र; आपदि—विपत्ति के समय; चरण-पङ्कजम्—चरणकमल; शम्-तमम्—सर्वोच्च तुष्टि प्रदान करने वाले; च—तथा; ते—तुम्हारा; रमण—हे प्रियतम; नः—हमारे; स्तनेषु—स्तनों पर; अर्पय—रखें; अधि-हन्—मानसिक क्लेश को विनाश करने वाले।

ब्रह्माजी द्वारा पूजित आपके चरणकमल उन सबों की इच्छाओं को पूरा करते हैं, जो उनमें नतमस्तक होते हैं। वे पृथ्वी के आभूषण हैं, वे सर्वोच्च सन्तोष के देने वाले हैं और संकट के समय चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। हे प्रियतम, हे चिन्ता के विनाशक, आप उन चरणों को हमारे स्तनों पर रखें।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

सुरत—माधुर्य सुख; वर्धनम्—बढ़ाने वाले; शोक—शोक; नाशनम्—विनष्ट करने वाले; स्वरित—ध्वनि की गई; वेणुना—आपकी वंशी द्वारा; सुष्ठु—अत्यधिक; चुम्बितम्—चुम्बन किया हुआ; इतर—अन्य; राग—आसक्ति; विस्मारणम्—विस्मरण कराने वाले; नृणाम्—मनुष्यों के; वितर—कृपया वितरण कीजिये; वीर—हे वीर; नः—हम पर; ते—तुम्हारे; अधर—अधरों के; अमृतम्—अमृत को।

हे वीर, आप अपने होंठों के उस अमृत को हममें वितरित कीजिये जो युगल आनन्द को बढ़ाने वाला और शोक को मिटाने वाला है। उसी अमृत का आस्वाद आपकी ध्वनि करती हुई वंशी लेती है और लोगों को अन्य सारी आसक्तियाँ विसरा देती है।

तात्पर्य : इस श्लोक पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की मनोरम टीका गोपियों तथा कृष्ण के मध्य वार्तालाप के रूप में है—

गोपियाँ कहती हैं, ''हे कृष्ण! तुम तो बिल्कुल सर्वश्रेष्ठ वैद्य धन्वन्तरि लगते हो। अत: हमें कोई औषधि दो क्योंकि हम तुम्हारी भोगेच्छा के रोग से पीड़ित हैं। तुम हमें अपने होठों का औषधिरूप अमृत हमसे बिना किसी बड़े मूल्य लिए मुफ्त दो। तुम तो बड़े दानवीर हो इसलिए तुम्हें चाहिए कि दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी इसे बिना किसी मूल्य के दो। यह समझ लो कि हम अपना जीवन खोने वाली हैं और तुम वह अमृत देकर हमें पुन: जीवन-दान दे सकते हो। आखिर तुमने इसे अपनी वंशी को तो दे ही रखा है, जो कि बाँस की खोखली छड़ी मात्र है।''

कृष्ण कहते हैं, ''किन्तु इस जगत में लोगों का भोजन तो सम्पत्ति, अनुयायी, परिवार इत्यादि से

आसक्ति का है, जो बुरा है। अत: जिन्हें ऐसा बुरा भोजन मिलता हो उन्हें वह औषधि नहीं मिलनी चाहिए जिसे तुम लोगों ने माँगा है।''

''किन्तु इस औषधि से अन्य सारी आसक्तियाँ भूल जाती हैं। यह औषधि इतनी अद्‌भुत है कि यह बुरे भोजन की आदत को भी ठीक कर देती है। इसलिए हे वीर! वह अमृत हमें दे दो क्योंकि तुम बड़े दानी हो।''

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटि युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अटति—घूमते हो; यत्—जब; भवान्—आप; अह्नि—दिन में; काननम्—जंगल में; त्रुटि—लगभग १/१७०० सेकंड; युगायते—एक युग के बराबर हो जाता है; त्वाम्—तुम; अपश्यताम्—न देखने वालों के लिए; कुटिल—घुँघराले; कुन्तलम्—बालों का गुच्छा; श्री—सुन्दर; मुखम्—मुँह; च—तथा; ते—तुम्हारा; जड:—मूर्ख; उदीक्षताम्—उत्सुकता से देखने वालों को; पक्ष्म—पलकों का; कृत्—बनाने वाला; दृशाम्—आँखों का।

जब आप दिन के समय जंगल चले जाते हैं, तो क्षण का एक अल्पांश भी हमें युग सरीखा लगता है क्योंकि हम आपको देख नहीं पातीं। और जब हम आपके सुन्दर मुख को जो घुँघराले बालों से सुशोभित होने के कारण इतना सुन्दर लगता है, देखती भी हैं, तो ये हमारी पलकें हमारे आनन्द में बाधक बनती हैं, जिन्हें मूर्ख स्त्रष्टा ने बनाया है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागता: ।
गतिविदस्तवोद्‌गीतमोहिता:
कितव योषित: कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पति—पति; सुत—बालक; अन्वय—पूर्वज; भ्रातृ—भाई; बान्धवान्—तथा अन्य सम्बन्धियों को; अतिविलङ्घ्य—पूर्णतया उपेक्षा करके; ते—तुम्हारी; अन्ति—उपस्थिति में; अच्युत—हे अच्युत; आगता:—आई हुई; गति—हमारी चालढाल का; विद:—प्रयोजन को जानने वाले; तव—तुम्हारा; उद्‌गीत—(वंशी के) तेज गीत से; मोहिता:—मोहित; कितव—हे छलिया; योषित:—स्त्रियों को; क:—कौन; त्यजेत्—त्याग करेगा; निशि—रात में।

हे अच्युत, आप भलीभाँति जानते हैं कि हम क्यों आई हैं। आप जैसे छलिये के अतिरिक्त भला और कौन होगा, जो अर्धरात्रि में उसकी बाँसुरी के तेज संगीत से मोहित होकर उसे देखने के लिए आई तरुणी स्त्रियों का परित्याग करेगा? आपके दर्शनों के लिए ही हमने अपने पतियों,

बच्चों, बड़े-बूढ़ों, भाइयों तथा अन्य रिश्तेदारों को पूरी तरह ठुकरा दिया है।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७॥

शब्दार्थ

रहसि—एकान्त में; संविदम्—गुप्त वार्ताएँ; हृत्-शय—हृदय में कामेच्छा का; उदयम्—उठना; प्रहसित—हँसता हुआ; आननम्—मुख; प्रेम—प्रेमपूर्ण; वीक्षणम्—चितवन; बृहत्—चौड़ी; उरः—छाती; श्रियः—लक्ष्मी; वीक्ष्य—देखकर; धाम—धाम; ते—तुम्हारा; मुहुः—बारम्बार; अति—अत्यधिक; स्पृहा—लालसा; मुह्यते—मोह लेती है; मनः—मन को।

जब हम आपके साथ एकान्त में हुई घनिष्ठ वार्ताओं का चिन्तन करती हैं, तो अपने हृदयों में कामोदय अनुभव करती हैं और आपकी हँसमुख आकृति, आपकी प्रेममयी चितवन तथा आपके चौड़े सीने का, जो कि लक्ष्मी का वासस्थान है, स्मरण करती हैं तब हमारे मन बारम्बार मोहित हो जाते हैं। इस तरह हमें आपके लिए अत्यन्त गहन लालसा की अनुभूति होती है।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक्चनस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

व्रज-वन—व्रज के जंगलों में; ओकसाम्—निवासियों के लिए; व्यक्तिः—प्राकट्य; अङ्ग—हे प्रिय; ते—तुम्हारा; वृजिन—दुख का; हन्त्री—विनाश करने वाला; अलम्—बहुत हो गया, बस; विश्व-मङ्गलम्—मंगलमय; त्यज—छोड़ दीजिये; मनाक्—थोड़ा; च—तथा; नः—हमको; त्वत्—तुम्हारे लिए; स्पृहा—लालसा; आत्मनाम्—पूरित मनों वाले; स्व—अपने; जन—भक्तगण; हृत्—हृदयों में; रुजाम्—रोग का; यत्—जो; निषूदनम्—शमन करने वाला।

हे प्रियतम, आपका सर्व मंगलमय प्राकट्य व्रज के वनों में रहने वालों के कष्ट को दूर करता है। हमारे मन आपके सान्निध्य के लिए लालायित हैं। आप हमें थोड़ी-सी वह औषधि दे दें, जो आपके भक्तों के हृदयों के रोग का शमन करती है।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण से गोपियाँ अपने स्तनों पर उनके चरणकमलों को रखने की बारम्बार विनती करती हैं। गोपियाँ भौतिक काम की शिकार नहीं हैं अपितु वे भगवान् के शुद्ध प्रेम में लीन रहने वाली हैं अतएव वे अपने सुन्दर स्तन उन्हें अर्पित करके उनके चरणकमलों की सेवा करना चाहती हैं। संसारी यौन इच्छा के शिकार भौतिकतावादी व्यक्ति कभी नहीं समझ पायेंगे कि

ये प्रेम-व्यापार किस तरह शुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर घटित होते हैं। यही तो उनका दुर्भाग्य है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; ते—तुम्हारे; सु-जात—अतीव सुन्दर; चरण-अम्बु-रुहम्—चरणकमल को; स्तनेषु—स्तनों पर; भीताः—भयभीत होने से; शनैः—धीरे धीरे; प्रिय—हे प्रिय; दधीमहि—हम रखती हैं; कर्कशेषु—कर्कश; तेन—उनसे; अटवीम्—जंगल में; अटसि—आप घूमते हैं; तत्—वे; व्यथते—दुखते हैं; न—नहीं; किम् स्वित्—हम आश्चर्य करती हैं; कूर्प-आदिभिः—छोटे कंकड़ों आदि से; भ्रमति—घूम जाता है; धीः—मन; भवत्-आयुषाम्—उन लोगों के लिए जिनके प्राण भगवान् हैं; नः—हमारा।

हे प्रियतम, आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम उन्हें धीरे से अपने स्तनों पर डरते हुए हल्के से ऐसे रखती हैं कि आपके पैरों को चोट पहुँचेगी। हमारा जीवन केवल आप पर टिका हुआ है। अतः हमारे मन इस चिन्ता से भरे हैं कि कहीं जंगल के मार्ग में घूमते समय आपके कोमल चरणों में कंकड़ों से चोट न लग जाए।

तात्पर्य : इस श्लोक का अनुवाद श्रील प्रभुपाद द्वारा अंग्रेजी भाषा में की गई *श्रीचैतन्यचरितामृत* की टीका (आदि ४.१७३) से लिया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''गोपियों के विरह गीत'' नामक इकतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।